2

नये नियम में धार्मिक संस्कार व समझ

''और विश्वास बिना उसे प्रसन्न करना अनहोना है, क्योंकि परमेश्वर के पास आनेवाले को विश्वास करना चाहिए, कि वह है; और अपने खोजनेवालों को प्रतिफल देता है'' (इब्रानियों 11:6)।

मनुष्य द्वारा परमेश्वर की इच्छा को मानने के लिए पांच सिद्धांत पुराने नियम के साथ-साथ नये नियम में भी मिलते हैं:

(1) आशीष किसी मानवीय गुण पर आधारित न होकर व्यक्ति के विश्वास के आधार पर दी जा सकती है (मत्ती 9:27-30)।

(2) आशीष बिना कुछ पूछे आज्ञा मानने के लिए आवश्यक विश्वास के आधार पर अर्थात समझ या आशीष में विश्वास के कार्य के बिना (प्रेरितों 3:4) दी जा सकती है ।

(3) आशीष उस विश्वास के लिए दी जा सकती है जो परिणाम के लिए कार्य करने को प्रेरित करता है। संसार पर विजय पाना (परिणाम जिसमें मानवीय कार्य आवश्यक है) यीशु में विश्वास का परिणाम है (1 यूहन्ना 5:4, 5)।

(4) आशीष विश्वास पर आधारित उस कार्य के लिए दी जा सकती है जिसमें कार्य तथा परिणाम के बीच कोई ज्ञात तार्किक सम्बन्ध नहीं है (यूहन्ना 9:1-7)।

(5) आशीष विश्वास करने वाले के बजाय दूसरों को दी जा सकती है (मत्ती 9:1-7)।

इसलिए, बपतिस्मा इन सिद्धांतों के अनुसार ही होना चाहिए।

विश्वास तथा बिना कुछ पूछे आज्ञा मानना

किसी आज्ञा को बिना कुछ पूछे मानने हेतु आशीष देने के लिए परमेश्वर में विश्वास पर आधारित क्रिया के बजाय एक अलग प्रकार की समझ तथा बोध की आवश्यकता होती है। बिना कुछ पूछे आज्ञा पालन करने के लिए केवल आदेश को समझना ही काफी है, जबकि विश्वास के लिए आदेश के साथ-साथ उससे मिलने वाले लाभ, आशीष तथा उस आदेश से जुड़ी हुई चेतावनी को समझना भी आवश्यक है। विश्वास करने वाले को यह समझने की ज़रूरत नहीं होती कि किसी विशेष कार्य की आवश्यकता क्यों है, उसे कहां

किया जा सकता है, या प्रत्याशित परिणाम से उसका युक्तिसंगत सम्बन्ध क्या है। उसे केवल इतनी समझ होनी चाहिए कि वह उस कार्य से बढ़कर कुछ विश्वास रखकर उस आदेश को सही ढंग से मान सकता हो। वरना, वह कार्य केवल बिना कुछ पूछे आज्ञा मानना ही रह जाएगा। प्रतिज्ञा के साथ आदेश में न केवल उस प्रतिज्ञा को समझना ही आवश्यक है बल्कि उसे पूरा करने के लिए परमेश्वर में *विश्वास* भी होना चाहिए।

इस पर किसी को यह आपत्ति हो सकती है कि विश्वास के कार्य के लिए अपने पुत्र इसहाक को वेदी पर बलिदान करने के लिए इब्राहीम को दी परमेश्वर की आज्ञा में समझ की नहीं बल्कि केवल बिना कुछ पूछे आज्ञा मानने की आवश्यकता थी। यह सत्य नहीं है, क्योंकि परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की थी कि इसहाक के द्वारा इब्राहीम के साथ उसकी वाचा पूरी होगी (उत्पत्ति 17:17-19)। इब्राहीम ने इस प्रतिज्ञा को समझा और विश्वास किया (इब्रानियों 11:17-19)। इसहाक की हत्या से यह प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जाती; इसलिए जो कार्य करना उसके लिए ज़रूरी था वह उसके विश्वास की परख थी, जो परमेश्वर द्वारा दी गई प्रतिज्ञा की समझ पर आधारित था।

विश्वास के लिए न केवल उस आज्ञा से जुड़ी प्रतिज्ञा को समझना ही काफी है, बल्कि इसमें सही उद्देश्य के लिए कार्य करना भी आवश्यक है। बिना कुछ पूछे विश्वास करने के लिए इन दोनों में से किसी एक की भी आवश्यकता नहीं है।

नये नियम के उदाहरण

मन्दिर में जाते हुए पतरस और यूहन्ना को एक भिखारी मिला जो चालीस से अधिक वर्षों से अपाहिज था (प्रेरितों 3:2; 4:22)। यीशु मसीह की शक्ति से उन्होंने उस लंगड़े आदमी को चंगा कर दिया (प्रेरितों 4:10)। इस घटना में विश्वास पर आधारित बिना कुछ पूछे आज्ञा मानना तथा उसका प्रत्युत्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं। पतरस ने उस आदमी से कहा, ''हमारी ओर देख!'' (प्रेरितों 3:4)। इस आज्ञा के पालन के लिए उसे उनकी ओर देखने की समझ जरूरी नहीं थी; प्रतिज्ञा की हुई आशीष या सही उद्देश्य में विश्वास केवल बिना कुछ पूछे आज्ञा मानना ही है।

वास्तव में, उस आदमी ने उनकी ओर ''... उनसे कुछ पाने की आशा रखते हुए'' गलत उद्देश्य से देखा था (स्पष्टत: वह दान, आदि पाने की अपेक्षा कर रहा था, प्रेरितों 3:5)। परन्तु बिना कुछ पूछे आज्ञा मानने में जब उसे ''हमारी ओर देख(ने)'' के लिए कहा गया तो उसने आज्ञा मानी।

परन्तु, पतरस तथा यूहन्ना की अगली आज्ञा के लिए बिना कुछ पूछे आज्ञा मानने से अधिक की आवश्यकता थी, क्योंकि इसका अर्थ न केवल आशीष ही था बल्कि इसमें समझ तथा विश्वास की भी आवश्यकता थी। उस आदमी को लगभग चालीस वर्षों से पता था कि वह चल नहीं सकता है (प्रेरितों 4:22)। चलने का प्रयास करने के लिए न केवल आज्ञा मानना बल्कि यीशु में *विश्वास* भी आवश्यक था, जिसके नाम से उसे चलने की आज्ञा दी गई थी (प्रेरितों 3:6)।

यदि वह उस आज्ञा में दी गई प्रतिज्ञा को न समझता, तो वह उस आज्ञा पर *विश्वास* से कार्य भी नहीं कर सकता था। बिना कुछ पूछे आज्ञा मानना ही उसका एकमात्र विकल्प होना था। यीशु के नाम से चलने की योग्यता की प्रतिज्ञा की समझ होने के कारण, वह यह विश्वास करके कि यीशु के नाम से वह चल सकता है, विश्वास से कार्य कर सका था (प्रेरितों 3:16)। यह विश्वास, जिसे केवल परमेश्वर ही देख सकता था और जिसका अनुमान केवल वह व्यक्ति ही लगा सकता था, उसे कार्य के लिए प्रोत्साहित किया; यही वह आधार था जिस पर परमेश्वर ने उसे चंगा किया। यदि उसे विश्वास न होता, तो परमेश्वर ने उसे चंगा नहीं करना था। सभी आश्चर्यकर्मों के लिए विश्वास आवश्यक नहीं था, परन्तु किसी व्यक्ति को यह समझ होने पर कि आश्चर्यकर्म होने वाला है उसमें विश्वास की कमी होने पर वह आश्चर्यकर्म नहीं होता था (मत्ती 13:58)।

परिणाम में विश्वास

नये व पुराने दोनों ही नियमों में जहां भी परमेश्वर ने उसकी सामर्थ में विश्वास तथा प्रतिज्ञा की हुई उसकी आशीष में विश्वास पर आधारित आशीष देने की प्रतिज्ञा की, वहां आशीष देने से पहले विश्वास और सही प्रत्युत्तर आवश्यक होता था।

यीशु ने अपने ही इलाके में लोगों के अविश्वास के कारण बहुत आश्चर्यकर्म नहीं किए थे (मत्ती 13:58)। इसका अर्थ यह है कि बेशक लोगों ने शारीरिक रूप से उसकी बातें मानी थीं, परन्तु उनके अविश्वास के कारण कोई आश्चर्यकर्म नहीं हुआ था। कई जगह यीशु ने रोगी को उस पर विश्वास के कारण चंगा किया, जिसमें उसकी ओर से कोई कार्य नहीं किया गया था (मत्ती 9:27-29)। दूसरे लोगों के साथ, उन्हें चंगा करने के लिए उसने कार्य की मांग की थी (यूहन्ना 9:1-7), और उसने और भी कई लोगों को उनके प्रियजनों के विश्वास के कारण चंगा किया था (मत्ती 9:1-7)।

विश्वास तथा *सही प्रत्युत्तर* पर आधारित आशीष के लिए न केवल आज्ञाकारी होने की, बल्कि इस विश्वास की भी आवश्यकता होती है कि परमेश्वर उस प्रतिज्ञा को पूरा करेगा जिसे हम समझते हैं। यदि यह सत्य नहीं है, तो विश्वास की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि *यदि कोई व्यक्ति समझता ही नहीं है कि परमेश्वर ने जो प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरा करेगा तो उसे परमेश्वर पर विश्वास कैसे हो सकता है?* पौलुस के अनुसार, इब्राहीम अच्छी तरह से समझ गया था कि परमेश्वर ने ''जिस बात की प्रतिज्ञा की है, वह उसे पूरा करने को भी सामर्थी है'' (रोमियों 4:20, 21)। विश्वास में न केवल आज्ञा पालन ही शामिल है बल्कि यह समझ भी होनी जरूरी है कि परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने में सामर्थी है और वह उसे पूरा करने को तैयार है (देखिए मत्ती 9:28)।

अभिप्राय, उद्देश्य तथा कार्य

यीशु और प्रेरितों ने स्पष्ट बताया कि सही कार्य के साथ-साथ सही अभिप्राय तथा उद्देश्य होना भी जरूरी है। अपने आप में न तो सही कार्य और न ही सही उद्देश्य या अभिप्राय

परमेश्वर को स्वीकार्य है।

धर्म के काम

यीशु ने सिखाया कि गलत उद्देश्य से किए गए धर्म के कामों के लिए परमेश्वर की ओर से कोई फल नहीं मिलता है। उसने कहा, ''सावधान रहो! तुम मनुष्यों को दिखाने के लिए अपने धर्म के काम न करो, नहीं तो अपने स्वर्गीय पिता से कुछ भी फल न पाओगे'' (मत्ती 6:1)। परमेश्वर इच्छा करता है कि लोग धर्म के काम करें (प्रेरितों 10:35); परन्तु सही अभिप्राय या उद्देश्य के बिना धर्म के कार्य करना परमेश्वर को अस्वीकार्य है। *उसकी दिलचस्पी कार्य के साथ-साथ अभिप्राय तथा उद्देश्य में भी है।*

सताव सहना। यदि कोई धर्म के कारण सताया जाता है, तो ऐसा सताव परमेश्वर को स्वीकार्य है (मत्ती 5:10)। कुछ लोग मनुष्य से महिमा पाने के लिए सताव सहना चाहते हैं, परन्तु यदि कोई अपना शरीर जलने के लिए भी दे दे परन्तु उसका उद्देश्य गलत हो, तो उसे इससे कुछ लाभ न होगा (1 कुरिन्थियों 13:3)। परमेश्वर की दिलचस्पी कार्य के साथ-साथ उद्देश्य में भी है।

चंदा। परमेश्वर ने अपने अनुयायियों को निर्धनों की सहायता करने की आज्ञा दी थी (गलतियों 2:10)। गलत उद्देश्य से दान देने वाले लोग निर्धनों की सहायता तो कर सकते हैं, परन्तु उन्हें परमेश्वर की ओर से कोई फल न मिलेगा (मत्ती 6:2-4; 1 कुरिन्थियों 13:3)। पौलुस ने यह कहते हुए यीशु को उद्धृत किया कि ''लेने से देना धन्य है'' (प्रेरितों 20:35)। दान देना परमेश्वर की तरह जो एक दानी (यूहन्ना 3:16), और उसके पुत्र जैसा बना है जो हमारा उदाहरण है और भी दानी (गलतियों 2:20)। एक मसीही मूल रूप से उसकी बात मानता है। परमेश्वर को ''कुढ़ कुढ़ के, और दबाव से'' दिया दान नहीं चाहता कि कोई केवल यह समझकर दे कि परमेश्वर ने इसकी आज्ञा दी है (2 कुरिन्थियों 9:7)। परमेश्वर की दृष्टि में यदि उस कार्य को करने वाले व्यक्ति का सही उद्देश्य न हो तो वह कार्य व्यर्थ व खोखला है।

प्रार्थना व उपवास। प्रार्थना व उपवास रखने वालों से परमेश्वर अपेक्षा करता है कि उनका उद्देश्य सही हो (मत्ती 6:5-7, 16-18)। लोगों को दिखाने के लिए की गई प्रार्थना तथा उपवास को परमेश्वर नकार देता है (मत्ती 6:5-7)। सही उद्देश्य के बिना किया गया कार्य परमेश्वर को अस्वीकार्य है।

शिक्षा। परमेश्वर चाहता है कि उसके अनुयायी दूसरों को सिखाएं (2 तीमुथियुस 2:2)। उसे उन लोगों द्वारा दी गई *सही शिक्षा* स्वीकार्य तो है जिनका सही उद्देश्य *नहीं* होता (फिलिप्पियों 1:15-18), परन्तु सही उद्देश्य के बिना सही शिक्षा देने वाला *व्यक्ति* परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकता (1 कुरिन्थियों 9:16,17)। उसका कार्य सही हो सकता है, परन्तु यदि उसका उद्देश्य गलत है तो वह कार्य परमेश्वर को अमान्य है।

गीत गाना। गाना परमेश्वर की आज्ञा है (इफिसियों 5:19; कुलुस्सियों 3:16); परन्तु इसलिए गाना कि यह परमेश्वर की आज्ञा है, काफी नहीं है। परमेश्वर यह भी चाहता है कि

गाना प्रभु के लिए मन के सुर से जुड़ा हुआ हो (इफिसियों 5:19)। गाने की क्रिया को परमेश्वर के लिए स्वीकार्य बनाने के लिए इसका उद्देश्य तथा अभिप्राय भी सही होना चाहिए।

प्रभु भोज /प्रभु भोज परमेश्वर द्वारा दी गई एक और आज्ञा है (1 कुरिन्थियों 11:23-26)। प्रभु भोज खाने तथा पीने वाले मसीही से हम पूछ सकते हैं, ''आप इसे क्यों ले रहे हैं?''

हो सकता है उसका उत्तर हो, ''परमेश्वर ने मुझे इस रोटी में से खाने और कटोरे में से पीने की आज्ञा दी है।''

हम पूछ सकते हैं, ''खाने और पीने का आपका उद्देश्य क्या है?''

उसका उत्तर यह भी हो सकता है, ''परमेश्वर ने मुझे इसे खाने और पीने की आज्ञा दी है।''

फिर हम पूछ सकते हैं, ''क्या खाने और पीने का कोई उद्देश्य नहीं है?''

उत्तर मिल सकता है, ''उद्देश्य का तो मुझे पता नहीं पर परमेश्वर ने इसकी आज्ञा दी है, इसलिए मैं इसे पूरा कर रहा हूं।''

ऐसा उत्तर रोटी और यीशु की देह, और कटोरे और यीशु के लहू के सम्बन्ध को *समझे बिना* आज्ञा मानना है।

कार्य तो सही होगा परन्तु उसका उद्देश्य तथा अभिप्राय गलत होगा। कार्य अपने आप में कुछ नहीं है, क्योंकि कार्य परमेश्वर को स्वीकार्य होने के लिए उद्देश्य तथा अभिप्राय का भी सही होना आवश्यक है (1 कुरिन्थियों 11:27-31)।

अभिप्राय और उद्देश्य

अधिकतर घटनाओं में किसी कार्य के उद्देश्य से ही निश्चित होता है कि वह कार्य सही है या गलत। यदि केवल अभिप्राय ही गलत हो तो कुछ बातें गलत होती हैं; अन्य कार्य जैसे व्यभिचार या शराबी होना, अभिप्राय न होने पर भी अपने आप में पापमय कार्य हैं।

यीशु ने कहा था, ''जो कोई किसी स्त्री पर कुदृष्टि डाले वह अपने मन में उससे व्यभिचार कर चुका है'' (मत्ती 5:28)। यीशु ने यह नहीं कहा कि स्त्री को इस नज़र से देखना मन में व्यभिचार है, क्योंकि उसे गलत उद्देश्य से न देखना मन में व्यभिचार नहीं है। अपनी वासना को मिटाने के लिए स्त्री की ओर देखने वाला, अपने मन में उससे व्यभिचार कर चुका होता है। देखने का कार्य न तो सही है और न गलत। गलत तो इसका उद्देश्य है।

बहुत से कार्य उसमें लिप्त व्यक्ति के उद्देश्य के अनुसार सही या गलत होते हैं। परमेश्वर द्वारा दी गई आज्ञा को मानना आवश्यक है, परन्तु इस प्रकार आज्ञा को मानना ही काफी नहीं है। परमेश्वर केवल वही आज्ञा मानने को स्वीकार करता है जो सही उद्देश्य के लिए है।

सारांश

नये नियम में, परमेश्वर चाहता है कि विश्वास पर आधारित प्रत्येक कार्य सही समझ, अभिप्राय तथा उद्देश्य से जुड़ा हुआ हो। यदि परमेश्वर की इच्छा किसी ऐसे कार्य में होती है

जिसमें सही समझ तथा उद्देश्य पर आधारित प्रत्युत्तर की आवश्यकता न हो, तो वह *आशीष में विश्वास के कार्य* को नहीं बल्कि बिना विचारे *आज्ञा मानने* को चाहता है। आज्ञाकारी विश्वास (रोमियों 1:5; इफिसियों 2:8; इब्रानियों 5:9) उद्धार का आधार है, जिसमें परमेश्वर की प्रतिज्ञा में विश्वास तथा उसकी समझ होना आवश्यक है। वरना आज्ञा मानना परमेश्वर की प्रतिज्ञा में विश्वास का नहीं, बल्कि बिना विचारे आज्ञा मानने का कार्य है। बिना विचारे आज्ञा मानने के कार्यों में विश्वास करने वाले की सही समझ, अभिप्राय तथा उद्देश्य के बिना परमेश्वर को स्वीकार्य मानने वाले लोगों को यह मानने से पहले कि ऐसे कार्य उद्धार दिला सकते हैं, इसके प्रभाव के उदाहरणों तथा वाक्यों को खोजना चाहिए।

विश्वास के सिद्धांत में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

(1) *समझ* होनी आवश्यक है कि क्या प्रतिज्ञा की गई है। विश्वास परमेश्वर का वचन सुनने पर आधारित है (रोमियों 10:17) जिसका अर्थ है इसे समझना।

(2) यह *विश्वास* करना आवश्यक है कि *परमेश्वर* अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने में समर्थ है। पौलुस ने लिखा कि इब्राहीम ''ने निश्चय जाना, कि जिस बात की उसने प्रतिज्ञा की है, वह उसे पूरा करने को भी सामर्थी है'' (रोमियों 4:21)।

(3) प्रतिज्ञा करने वाले को *विश्वास योग्य मानना* आवश्यक है। परमेश्वर में सारा के विश्वास के विषय में, लिखा गया है, ''... उसने प्रतिज्ञा करने वाले को सच्चा जाना था'' (इब्रानियों 11:11)।

(4) आवश्यक क्रिया तथा अपेक्षित लाभ के बीच कोई तर्कसंगत सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है। इस्राएल के लोग यरीहो की दीवारों के गिरने तथा अपने कार्य में कोई तर्कसंगत सम्बन्ध का अनुमान नहीं लगा सकते थे; परमेश्वर में अपने विश्वास के कारण, वे आगे बढ़े, शोर मचाने और नरसिंगा फूंकने लगे। उन्होंने देखकर नहीं बल्कि परमेश्वर में विश्वास से कार्य किया था (इब्रानियों 11:30; 2 कुरिन्थियों 5:7)।

(5) विश्वास को अपने आप पूरा होने में नहीं, बल्कि *परमेश्वर पूरा करेगा,* में जगह दी गई है। इब्राहीम को विश्वास था कि परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने में समर्थ है (रोमियों 4:21)। आगे बढ़ने वालों को विश्वास था कि उनकी सामर्थ से नहीं बल्कि परमेश्वर की सामर्थ से यरीहो नगर की दीवारें गिरेंगी। अपवाद भी होते हैं, जिसमें परमेश्वर ने आज्ञा दी और व्यक्ति को किसी कार्य के लिए प्रेरित करने के लिए उस से विश्वास की मांग की गई ताकि अपेक्षित परिणाम प्राप्त हों। अपने घराने को बचाने के लिए नूह द्वारा जहाज़ बनाना (इब्रानियों 11:7) ऐसा ही एक अपवाद है।

(6) विश्वास प्रतिज्ञा को पूरा करने की परमेश्वर की योग्यता को मान लेगा चाहे व्यक्ति को यह पता न भी हो कि परमेश्वर उस प्रतिज्ञा को पूरा कैसे करेगा। उदाहरण के लिए, इब्राहीम अपने पुत्र का बलिदान देने को तैयार था जिसके द्वारा परमेश्वर ने उसे वंश देने की प्रतिज्ञा की थी (इब्रानियों 11:17-19)। उसे यह पता नहीं था कि परमेश्वर अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा *कैसे* करेगा, परन्तु उसे इतना विश्वास था कि परमेश्वर इसे अवश्य पूरा *करेगा।* उसने परमेश्वर द्वारा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने की बात पर विश्वास रखकर

उसकी आज्ञा मानी।

(7) विश्वास बिना विचारे आज्ञा मानने के सिद्धांत से आगे निकल जाता है। विश्वास के लिए परमेश्वर में भरोसा रखना ज़रूरी है कि यदि मनुष्य उसकी शर्त को पूरा करे, तो परमेश्वर अपनी की हुई प्रतिज्ञा को अवश्य पूरा करेगा।

विश्वास के बिना परमेश्वर को प्रसन्न करना असम्भव है (इब्रानियों 11:6)। जिस प्रकार का विश्वास परमेश्वर उन लोगों से चाहता है जो उसे प्रसन्न करना चाहते हैं वह विश्वास वही है जो कार्य करता है। क्योंकि विश्वास करने वाले व्यक्ति को विश्वास होता है कि परमेश्वर अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पूरा करेगा।

परमेश्वर में विश्वास करने में उसके अस्तित्व को मानने से अधिक बातें शामिल हैं। परमेश्वर यह चाहता है कि उसकी इच्छा को पूरा करने की इच्छा रखने वाला भरोसा रखे कि वह उसे प्रतिफल देगा (इब्रानियों 11:6)। यदि किसी को यह समझ नहीं है कि उसके कार्य करने पर परमेश्वर उसे क्या फल देगा, तो वह अपने कार्य से फल पाने के लिए परमेश्वर में विश्वास रखकर कार्य नहीं कर सकता। प्रतिज्ञा की आज्ञा तो नहीं मानी जा सकती, परन्तु प्रतिज्ञा को पाने के लिए परमेश्वर में विश्वास रखकर कार्य किया जा सकता है।

बिना विचारे आज्ञा मानने या खोखले धार्मिक संस्कार से बढ़कर कुछ पाने के लिए, पाठ के प्रारम्भ में दी गई पांच बातों में से (नम्बर 4) बपतिस्मा केवल *एक* हो सकता है। *बपतिस्मा परमेश्वर द्वारा दी गई प्रतिज्ञा की आशीष पाने के लिए विश्वास का कार्य नहीं है,* न ही बिना कार्य के विश्वास, न बिना विचारे आज्ञाकारिता, न वह विश्वास जो फल पाने के लिए कार्य करने को प्रेरित करता है और न ही दूसरों का विश्वास है। पौलुस द्वारा बपतिस्मे की चर्चा में जिस पर हम बाद में बात करेंगे बपतिस्मे को बिना विचारे आज्ञा मानने से बढ़कर बताया गया है।

बपतिस्मा परमेश्वर द्वारा आशीष देने की प्रतिज्ञा को *प्राप्त* करने के लिए नहीं बल्कि उसे *पाने* के लिए विश्वास से किए गए कार्य की शर्तों को पूरा करता है। बेशक बपतिस्मे तथा पापों की क्षमा के बीच कोई तर्कसंगत सम्बन्ध का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, परन्तु प्रभु भोज की तरह ही, बपतिस्मे और छुटकारे के यीशु के कार्य में सम्बन्ध की समझ होनी जरूरी है। प्रभु भोज में अखमीरी रोटी खाकर और कटोरे में से पीकर व्यक्ति आत्मिक अर्थ में यीशु की देह और उसके लहू में सहभागी होता है (1 कुरिन्थियों 10:16; 11:23-26) बपतिस्मे में हम हृदय से उस शिक्षा को मानकर जिसके सांचे में ढाले जाते हैं यीशु की मृत्यु, गाड़े जाने और पुनरुत्थान में सहभागी होते हैं (रोमियों 6:4-6, 17, 18; कुलुस्सियों 2:12) ऐसी समझ और आत्मिक भागीदारी के बिना प्रभु भोज और बपतिस्मा दोनों ही बिना विचारे आज्ञा मानने के खोखले धार्मिक संस्कार बन जाते हैं।

बपतिस्मे में अपने आप में पाप क्षमा करने की सामर्थ नहीं है। इसका अर्थ यह होना चाहिए कि बपतिस्मे के लिए अपने आपको समर्पित करने वाले व्यक्ति को इसे प्राप्त करने के लिए अपनी सामर्थ या योग्यता पर अपने विश्वास पर *या,* उसे बपतिस्मा देने वाले पर *या,* पानी पर *नहीं* बल्कि पापों की क्षमा के लिए यीशु के लहू पर विश्वास करना आवश्यक है

(प्रेरितों 2:38)। *बपतिस्मा लेते समय जब तक व्यक्ति बपतिस्मे, यीशु के लहू और पापों की क्षमा में बनाए परमेश्वर के सम्बन्ध को नहीं समझता उसका विश्वास उसे उद्धार नहीं दिला सकता।* कोई भी शिक्षा जो यीशु के लहू की शुद्ध करने वाली सामर्थ में विश्वास से बपतिस्मे को अलग करती है वह लहू में विश्वास के बिना खोखला धार्मिक संस्कार ही है।

कुछ कार्य अपने आप में ही गलत हैं (जैसे व्यभिचार) और कुछ उनके साथ जुड़े उद्देश्य के आधार पर सही या गलत होते हैं (जैसे किसी पुरुष द्वारा स्त्री को देखना)। बपतिस्मे में कोई भी ऐसी बात नहीं है जो इसके कार्य को सही या गलत बनाती है; इसलिए इसे *केवल* इस कार्य के साथ जुड़े विश्वास तथा उद्देश्य के अनुसार ही स्वीकार या अस्वीकार किया जाना चाहिए।